दर्शकः

प्रशान्त घनश्याम-जमुना देसाई

रत्न
३

NivedanBhaav

based on

Siddhant Rahasya

of

Pujya Shrï Vallabhāchārya

Written & published by

Prashant Desai

Dipt.me

e-publication

May 11, 2025

मूल्यः सहयोग-सेवा

© Prashant Desai

All Rights Reserved.

Without the prior written permission of the publisher,

This book may not be reproduced or sold in any form.

Email: usha.dipt@gmail.com / Visit at: www.dipt.me

हरिॐ नमो भगवते श्रीकृष्णाय वासुदेवाय

श्रीवल्लभाचार्यविरचितम्

॥ सिद्धांत रहस्य ॥

आधारित

श्रीवल्लभ साहित्यमाला : रत्न - ३

निवेदनभाव

श्लोक पदच्छेद अन्वय

भाषांतर तात्पर्य

दर्शक : प्रशांत घनश्याम-जमुना देसाई

हम जानतें है कि भगवानने अनेक भक्तों या महापुरुषोंको दर्शन और वरदान दिये है। कंई भक्तोंको प्रभु जीवनभर साथ देकर अंतमें अपने धाम भी ले गयें है। बहोतसे जन्मोंके बाद, सत्कर्म और भक्ति फलीभूत होनेसे ऐसा जीवन मिलता है।

एक ऐसे कालमें जब भक्ति मात्र भीतिसे घीरी हुई थी और ज्ञान, नानावाद विनष्टेषु.. वाद-विवादोंमें और ग्रंथोमें ही कैद था; ऐसी परिस्थितिमें श्रीवल्लभने, प्रभुनिर्देशित कार्य किया, सच्ची भक्तिके सिद्धांत प्रस्थापित किये थे। श्रीभगवानने स्वयं श्रीवल्लभाचार्यके समक्ष प्रगट होकर, उनको लोककल्याणका रास्ता दिखाया था, जो इस ग्रंथमें ग्रथित है।

वैसे तो, भगवान स्वयं आयें तो भी, यह विश्व न बदलेगा.. न सुधरेगा! और ये तो कलियुग है! महापुरुषोंके ज्ञानका या भक्तोंके कार्योंका, कम ही लोगों पर प्रभाव होगा! जिन लोगोंको मात्र भगावानके प्रति श्रद्धा हो, उनको कलियुगसे बचानें, भगवान किसी महापुरुषको भेज देतें है। भगवानकी इच्छा आधारित कार्य संपन्न होनेके बाद, वो महात्मा तो चले जातें है साथमें उनके साहित्यके मूल भाव भी नहीं रहतें! ग्रंथों.. विचारोंके अर्थ तिरोधान.. अलोप हो जातें है!

दुःखकी वात है पर सत्य है कि, महापुरुषोंके पीछे उनके नामसे संप्रदाय, पेटा संप्रदाय खडें हो जातें है, पर उन प्रणेताका मूलभूत साहित्य या सिद्धांतका रक्षण नहीं होता! प्रत्येक आचार्य या महापुरुषकी यह स्थिति है। जहाँ वेदव्यासके महाभारत या पुराणग्रंथ यथावत नहीं मिलते, वहाँ कुछ ओर कहाँ बचेगा? म्लेच्छाक्रांतेषु देशेषु.. म्लेच्छोंके द्वारा बहुमूल्य विरासतें नष्ट हुई, उसमें सभी महत्वपूर्ण साहित्य भी चला गया!

श्रीवल्लभके अन्य कुछ साहित्योंकी तरहा, यह 'सिद्धांतरहस्य' भी अपूर्ण उपलब्ध है। हरिइच्छा! बीचमें तीसरे व चौथे श्लोकके बाद कुछ श्लोक और अंतमें समापनके श्लोक विलुप्त हुए है। अंतमें नवाँ अर्धश्लोक है! कौन विद्वान अंतमें आधा श्लोक छोडेगा या विधिवत् समापन न लिखेगा? पर वे यहाँ नहीं मिलते है।

तो जो भी-जितना भी उपलब्ध है उसे, भगवानकी कृपा मानकर और गागरमें सागर जानकर, यथार्थ समजनेका प्रयत्न करेंगे। जिन्होंने इतना भी संभाला है, हम तक पहोंचाया है, उनका आभार व्यक्त करेंगे!

सिद्धांत रहस्य

'सिद्धांत रहस्य'! सिद्धांत क्या और उसका रहस्य.. गुप्तता क्या? वे जाननें है। चौथे श्लोकमें भगवानने कही हुई 'असमर्पण'की वात और पांचवे श्लोकमें आचार्यश्रीकी सीधी 'निवेदन'की वात, दोनों बडें सिद्धांत है। बीचके श्लोकोंकी विलुप्तिसे, दोनोंके संवादका अनुमान करना पडता है कि भगवानने विशेष ऐसा कहा होगा और आचार्यश्रीने ऐसे आज्ञा स्वीकार की होगी!

एक वात निश्चित है कि श्रीवल्लभने यहाँ 'आत्मनिवेदन' किया ही होगा, जो भक्तिका अंतिम चरण है.. अंतिम पगथी है। वहाँ तक आचार्य पहोंचे इसलिये तो प्रभु प्रगट हुए! जब भगवान अंतर्धान हुए होंगें, पश्चात् कदाचित उनके स्वरूपके बारेमें कुछ लिखा भी होगा, जो उपलब्ध नहीं है। आरंभमें भगवानकी स्तुति भी की होगी पर, ग्रंथका आरंभ सिधे भगवानके आदेशसे मिलता है।

सचमें, भक्तके जीवनका सबसे बडा सौभाग्य कहा जाय कि भगवान स्वयं आज्ञा करें! भक्तको वरदान मिले उससे तो आदेश या उपदेश मिले तो ज्यादा धन्य हो जाय! और भगवान भी, योग्यतासे ही कार्य देंगे! मात्र भक्त होगा तो दर्शन देंगे, वरदान देंगे या संतुष्ट करेंगे! यहाँ तो ज्ञानीभक्त है! ऐसे कैसे जाने देंगे! लोककल्याण करनेका आदेश दिया उपरांत पद्धति भी दर्शायी! आचार्यश्रीको कितना हर्ष हुआ होगा! कहा, साक्षात् भगवानने जो कहा वो अक्षरशः कहता हूँ!

तो हम उनके संवादको समझनेका प्रयत्न करेंगे और भगवानका उपदेश आत्मसात करेंगे। यहाँ प्रथम दो शब्दोंको समझें। समर्पण और निवेदन, उसमें समर्पण.. सम्यक् अर्पण अर्थात् सर्व यथावत अर्पण करना! और निवेदन शब्दके तीन अर्थ है; ज्ञापन.. कहना.. स्पष्ट करना, दूसरा व्यक्त होना.. खुलकर आना.. अंतःकरण खोल देना और तीसरा अर्पण करना.. सोंपना। भक्तिमें आत्मनिवेदन अर्थात् अपना सर्वस्व सोंप देना। इसके लिये लौकिकमें एक ही उदाहरण है, जैसे भारतीय सन्नारी पत्नी होकरके पतिको निवेदन करती है, उसी रीतसे भक्तिकी अंतिम स्थितिमें भक्त भगवानको जीवन सोंपता है, वो है आत्मनिवेदन! यहाँ अलौकिकता है.. संसारपारकी स्थिति है। यही सच्ची मनुष्य जीवनकी कृतकृत्यता है। आचार्यश्री यह आत्मनिवेदन हमारे जीवनमें लाना चाहतें है।

अब समर्पणता.. निवेदनके भावको विगतसे देखेंगे, अस्तु।

~ प्रशांत देसाई

१ श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते॥

श्रावणस्य	अमले	पक्षे	एकादश्याम्		महानिशि
श्रावणमासके	सूद	पक्षमें	एकादशीकी		महारात्रिमें
साक्षात्	भगवता	प्रोक्तम्	तत्	अक्षरशः	उच्यते
प्रगट होकर	भगवान	बोले	वह	अक्षरशः	कहा जाता है

श्रावणस्य अमलेपक्षे, एकादश्याम् महानिशि (यत् स्वयम्)
भगवता साक्षात् प्रोक्तम् तत् अक्षरशः (यथावत् मया) उच्यते॥

श्रावण महिनेके शुक्लपक्षमें.. शुद्ध एकादशीकी महारात्रिमें (पवित्रा एकादशीको, भगवानने दर्शन देकर जो स्वमुखसे..) भगवानने साक्षात्.. प्रगट होकर कहा उसे, अक्षरशः (जैसा कहा वैसा ही, मुझसे) कहा जा रहा है।

तात्पर्य : प्रथम प्रश्न होता है कि भगवान रात्रीमें ही क्यों प्रकट हुए? दिनमें क्यों नहीं? उत्तर है, या निशा सर्व भूतानाम्... जो सर्व भूतोंकी रात्री है वहाँ संयमी जागता है! भगवान और महान भक्तके विचारविमर्शमें, आसपासका कोलाहल.. शोर और लोगोंका विक्षेप कैसे चलें? रात्रीकी शांतिमें ही ऐसी चर्चाएँ होती है।

आचार्यश्रीने पूछा ही होगा, भगवान! क्या सेवा करूँ? ऐसा क्या करूँ जिससे सभी लोग आपकी ओर बढें? सभी लोगोंको आपका शरण कैसे मिले? कलिकालमें आपको मिलना ओर भी दुर्लभ है। उसके प्रत्युत्तरमें जो भगवाने कहा होगा उसे, वैसा ही.. यथावत, हमारी समक्ष आचार्यश्रीने रख दिया है।

कितनी सहजता! घमंडका हलकासा भी आभास नहीं कि मुझे भगवानने दर्शन दिया है! मुझे भगवानने कहा है और वो आपको मानना ही होगा! ऐसा कोई आग्रह नहीं, कोई आशा-अपेक्षा नहीं, सीधा सरल शब्दांतरण..

सचमें! भोलेके भगवान! ऐसा होता है कि यदी आचार्य जैसा या नरसिंह महेता जैसा भोलापन मिल जाय! फिर भगवान कहाँ दूर है? पर अपनी वात अलग है! अपना बालपन जाय साथमें भोलपन भी जाय! फिर क्या होय? भोलपन जाये तो जाये, साथमें शाणपन इतना आये कि भोलेपनकी वात भी समझ ना पायें!

२ ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पंचविधाः स्मृताः॥

ब्रह्म-सम्बन्ध-करणात्	सर्वेषाम्	देह-जीवयोः		
ब्रह्म-संबंधको साधन बनाकर	सर्वमें.. प्रत्येकमें	देहका जीवके संग		
सर्व-दोष-निवृत्तिः	हि	दोषाः	पञ्चविधाः	स्मृताः
सर्व दोषोंकी निवृत्ति	क्योंकि	सभी दोष	पांच प्रकारसे	कहें है

(श्रीभगवान् उवाच,) सर्वेषाम् देह-जीवयोः, ब्रह्म-संबंध-करणात्
(बुद्ध्याः। उपायः) हि सर्वदोष-निवृत्तिः। पंचविधाः दोषाः स्मृताः॥

(श्रीभगवान बोले,) सभीमें.. प्रत्येकके जीवनमें, देहका जीवके साथ (संबंध क्या है? वो) ब्रह्म-संबंधको करण.. साधन करके (समझाओ)। क्योंकि सर्व दोषोंकी निवृत्ति (ही उसका उपाय है और) स्मृतियोंमें पांच प्रकारसे दोषोंके वर्णन है।

तात्पर्य : कलियुगमें मात्र देह और भौतिकतामें ही डटें हुए लोगोंमें, साधकों या सज्जनोंको उनका रंग न लगे, इसलिये यह उपाय कहा होगा। उपनिषत्के 'तत्त्वमसि' या 'अहं ब्रह्मास्मि' जैसे महावाक्योंको, हमलोग भूल गयें है। लोग सच्चा मनुष्यत्व ही भूले बैठें है, वहाँ ऐसी ज्ञानपूर्णताकी वातें ही कहाँ बची?

भगवानने कहा होगा कि लोगोंको यह सच्चा मनुष्यत्वका तत्त्वज्ञान समझाओ! उनको कहो कि तुम पशुदेहमें नहीं, मानवदेहमें हो। तुम जीवरूप नहीं, सच्चिदानंद ब्रह्म स्वरूप हो! मानव हुए जीवात्माको उसका ब्रह्मात्माका संबंध समझाओ!

मनुष्य यह वात समझ सकेगा! जीव है तो देहका महत्व है.. जीवन है। देह ही जीवका जगत है, मानों जीवने एक जगत धारण किया है; उसमें जीव यह ब्रह्मका आंतरिक स्वरूप है और देह यह ब्रह्मका बाह्य स्वरूप है।

अब देह.. बाह्य जगतको ब्रह्मस्वरूप समझना दूरकी वात है परंतु, मनुष्य स्वयं ब्रह्मरूप है वो क्युं नहीं समझता? अहं ब्रह्मास्मिनी अनुभूति क्यों नहीं है? क्या कारण है? उसका कारण है दोष.. ऋण.. पाप! आंशिक ब्रह्म दुषित हुआ तो जीवरूप हुआ! जीव अपने वो दोष निकाल दें, शुद्ध हो जाय तो, मनुष्यको उसका ब्रह्म स्वरूपका भान हो जाय। इसलिये श्रीभगवानने वल्लभाचार्यको ऐसी दोष-निवृत्तिकी प्रवृत्ति देनेको कहा! ब्रह्मके संबंधको ही साधन बना लें!

३ सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः।
संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कथनं च॥

सहजाः		देश-काल-उत्थाः			लोकवेद-निरूपिताः		
साथ जन्मे हुए		प्रदेश और समय अनुसार			लोक विचारसे निरूपित हुए		
संयोगजाः	स्पर्शजाः		च	न	मन्तव्याः	कथनम्	च
संगसे हुए	विषयोंसे हुए		और	नहीं	मानने	उपदेशको	भी

(भगवान् पंचदोषाः प्रदर्शयेत्। १) सहजाः (२) देशकालोत्थाः लोकवेदनिरूपिताः (३) संयोगजाः च (४) स्पर्शजाः च (५. महतां दोषः, भगवत्) कथनम् न मन्तव्याः॥

(पांच दोष दर्शातें है। १) सहज.. साथमें ही जन्में हुए, जन्मजन्मांतरके परिणामसे मिले हुए दोष, (२) देश-देशांतरमें या समयाधिन निर्मित, लोकविचारोंसे या मत-मतांतरोसे.. पंथो या संप्रदायोंसे निरूपित हुए दोष (३) संयोग.. संग या सहवाससे होते दोष और (४) स्पर्श.. इंद्रियोंके विषयों संग स्पर्श.. संसर्गसे होते दोष और (५. सबसे बडा दोष, भगवानके) कथन.. उपदेश.. विचारोंको न माननेका दोष।

तात्पर्य : इन पाँचों दोषोंमें भगवानने सब आवृत्त कर लिया! कोई भी दोष होगा वो इन पाँचका ही परिणाम होगा। सच्ची शास्त्रीय भक्तिसे ही दोष दूर होंगे पर प्रयत्न स्वयं ही करना पडेगा। जैसे कि पाणी शरीर साफ करेगा, मेल दूर करेगा, पर स्नान तो स्वयं ही करना पडेगा!

उस प्रयत्नमें प्रथम उन पाँचों दोषोंको पहचानेंगे और स्वयंमें खोजेंगे।

१. सहजा.. साथमें जन्में हुए। जन्म-जन्मांतरसे साथमें आयें हुए दोष। बच्चें जन्मसे ही अच्छी या बूरी आदतों.. लतोंके साथ आयें होतें है। उसमें कुटेव दोष पैदा करेगी। बचपनसे ही विचित्र स्वभाव होगा तो दोष पैदा करेगा।

२. लोकवेद निरूपिताः देश-काल अनुरूप, लोगोंसे पारित रीत-रीवाजें और उनसे होते दोष। मूल धर्म या विचारोंमें हुए परिवर्तनसे होते दोष। जैसे कि धर्मशास्त्र ना कहें तो भी कुछ लोगोंने मांसाहार अपनाया, उसका दोष लगेगा ही। युवावर्ग स्वतंत्रताके नाम पर स्वच्छंदी हुए, उनमें युवतियोंकी स्वैरवृत्ति! पूरे समाजको दुषित करतीं है। देश काल आधारित ऐसे फेशनके नाम पर दोष हुए।

३. संयोगजा.. परिस्थितिजन्य दोष। अचानक.. अप्रत्याशित परिस्थितिमें, करना न हो फिर भी, दोष हो जाय! इसमें स्तेय.. चोरी और परिग्रह मुख्य है। देखादेखीसे या लोभसे संयोगगवश दोष होतें है। व्योपारीयोंका कालाबाजार, मिलावट या नफाखोरी और नोकरोंकी कामचोरी या कालीकमाई दोष है।

४. सपर्शजा.. विषयजन्य दोष। सबसे ज्यादा ये दोष होतें है। विषयासक्ति, भोगोंमें लगे रहेना, उससे कर्तव्योंको भूलना और फिर धर्म विरुद्ध आचरण होगा! विलासी.. एशोआराम करना। विषयभोग पानेके लिये, अनाचारसे लेकर अत्याचारतक, कुछ भी करना! कामांध होनेसे न भयं न लज्ञा! फिर जो होगा वो दोष ही होगा! संयम और अनुशासन विना ऐसे दोष होतें है।

५. न मन्तव्याः कथनं : भगवानका कहा न मानना, वह मनुष्य जीवनमें सबसे बडा दोष है! भगवानने हमको सृष्टिमें निराधार नहीं छोड दिये है। भोग भुगतने.. आनंद प्राप्त करने सृष्टिमें भेजें है तो साथमें, कहीं खो न जायें.. कहीं फँस न जायें, उसके लिये व्यवस्थित मार्गदर्शन भी किया है। सृष्टिके साथमें ही वेद दिये। वे जानते थे कि कलियुगमें लुप्त होंगे, इसलिये हमारे लिये गीताजी द्वारा उपदेश देकर, समग्र मानवजातिको उपकृत किया। कोई बाप भी अपने बच्चोंको निराधार नहीं छोडता, तो क्या भगवान हमें छोड देंगे? ना, पर हम उनके कथनको.. उपदेशको.. विचारोंको न मानेंगे तो दोष किसका? गीता संस्कृतमें है, इसलिये इसे समझानें कितने महापुरुष भेजे! फिर भी उनकी अवहेलना करके भगवानका न मानें तो, हमसे अधिक अभागी कौन? बादमें दोष उत्पन्न हो जाय तो भूल किसकी?

इसलिये प्रथम गीताजी ही पढेंगे, समझनेका प्रयत्न करेंगे। स्वाध्यायसे मन-बुद्धि शुद्ध करके भगवानको धरें! भक्ति बढेगी.. योग होगा, तत्पश्चात् भगवानके प्रिय होंगे! भगवान तो देखते ही है कि मुझे मानता है या मेरा मानता है! परीक्षा भी अवश्य लेंगे, बादमें स्वीकार करेंगे! पश्चात् दोष होनेका भय नहीं रहेगा।

और हम सामान्य लोग! ना भूत जानतें है ना भावी! ऋण क्या वा बंधन क्या! नहीं पढाया जाता या नहीं कोई सिखाता है! क्या करें? अपने पेट और पेटी कभी भरातें नहीं! पापके पोटलें और दोषके टोपलें भरायें जा रहें है! अब करना क्या? इसके लिये स्वयं भगवान उपाय दर्शातें है...

यहाँ कोई तारण तो बताया होगा ही पर कुछ श्लोक लुप्तप्राय हुए है.. ..

४ अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथंचन।
असमर्पितवस्तूनां तस्माद्वर्जनमाचरेत्॥

अन्यथा	सर्वदोषाणाम्	न	निवृत्तिः	कथंचन
अन्य रीतसे	सर्वदोषोंका	नहीं	निराकरण	कुछ भी करके
असमर्पित-वस्तूनाम्	तस्मात्	वर्जनम्	आचरेत्	
समर्पी न हो ऐसी वस्तुओंको	इसलिये	वर्ज्य करके	आचरण करना	

(श्रीहरिः विशेषम् उक्तम्।) तस्मात् असमर्पित-वस्तूनाम् वर्जनम् आचरेत्। अन्यथा कथंचन सर्वदोषाणाम् न निवृत्तिः॥

(श्रीहरि अब सबसे महत्त्वका सिद्धांत कहतें है,) इसलिये जिन वस्तुओंको (जीवको) न समर्पी हो, (प्रकृतिने जीवको फलरूपसे न दी हो, ऐसी सर्व वस्तुएँ दूर रखें.. त्यागें..) वर्जित करें, वर्ज्य.. निषेधरूप मानकर आचरण करें। अन्यथा.. दूसरी कोई रीतसे, कुछ भी करके.. किसी भी उपायसे, सर्वदोषोंकी निवृत्ति शक्य नहीं है, निराकरण नहीं हो सकता।

तात्पर्य : मा फलेषु कदाचन! दूसरोंके फल पर कभी अधिकार नहीं करना। मफतका.. फोगटका.. हरामका.. विना प्रयत्न या विना भाग्यका कभी न लें! सबसे बडा दोष लगेगा, उसको भुगतनेमें बहोत जन्म लग जायेंगे! हम जो धर्म-कर्म करतें है उसके फल प्रकृति देती है, यथोचित देती है। वो ही लें! दूसरोंका लेनेमें कोई दिक्कत नहीं है, उधार लेने जैसा होगा। फिर प्रकृति छोडेगी क्या? दूगनी-तुगनी महेनत करवायेगी! उसे ही ऋण कहतें है, जिसका लिया है उसका वापस दिलायेगी ही! दान करनेमें दोष नहीं, दूसरेसे लेनेमें हानि! वो ऋणरूप!

अब यहाँ भगवानने भक्तिपूर्ण समर्पणकी.. निवेदनकी वात की ही होगी, तत्कुरुष्व मदर्पणम्... पर बीचसे ही भगवानका निरूपण कटता है और सीधा आचार्यश्रीके कथनका आरंभ होता है, वो भी पहलेसे नहीं। बीचका सबकुछ अनुमान करना पडेगा। निवेदन भावका कोई विधिवत आरंभ तो होगा ही!

कहतें है कि जो अपना है, जो हमने पाया है उसका निवेदन.. अर्पण करना चाहिये क्योंकि, ऐसा करनेसे श्रीभगवानने गीताजीमें कहा है वैसे, 'मुझे अर्पण करके तू चिंतामुक्त हो' यह स्थिति होगी। आचार्यश्री निवेदकोंको कहतें है कि...

५ निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः।
न मतं देवदेवस्य सामिभुक्तसमर्पणम्॥

निवेदिभिः	समर्प्य	एव	सर्वम्	कुर्यात्	इति	स्थिति
अर्पक द्वारा	अर्पण योग्य	ही	सर्वकुछ	किया जाय	ऐसी	स्थिति
न	मतम्	देवदेवस्य		सामिभुक्त-समर्पणम्		
नहीं	मंतव्य	श्रीकृष्णका		अर्धभोगका समर्पण		

(आचार्यश्री निरूपितम्।) निवेदिभिः सर्वम् एव समर्प्य कुर्यात् इति स्थिति। सामिभुक्त समर्पणम् (इति) देवदेवस्य.. श्रीकृष्णस्य न मतम्॥

(इस श्लोकसे आचार्यश्रीने निरूपण किया है।) निवेदनकार.. समर्पक द्वारा, उसका कुछ भी अर्पणयोग्य पदार्थ, अर्पण करनेकी व्यवस्था है.. संमति है। सामि.. अर्धभुक्त या पेटाभोगका समर्पण (किया जाय या नहीं ऐसा) देवोंके देव श्रीकृष्णका मत नहीं है (अर्थात् अच्छा-बुरा, जैसा भी हो, अर्पण कर सकतें है।)

तात्पर्य : भगवानको सबकुछ अर्पण हो सकता है! जबसे भाव जगे तबसे, जैसा हो वैसा, अर्पण कर सकतें है! उसमें मात्र पूर्ण प्रामाणिकता आवश्यक है!

यहाँ सीधा अर्धभोगका श्लोक न होगा, इसके पहले निवेदन निर्देशित श्लोक होने ही चाहिये, जो उपलब्ध नहीं है। फिर भी विचारें तो, प्रभुको अर्पण क्या हो सकें? जो हमारा हो, हमें फलरूपसे मिला हो या प्रयत्नसे पाया हो उसे ही दे सकतें है। हम स्वयं पौधा उगायें फिर उसके फूल भगवानको धरें, उसको अर्थ है। दूसरोंके पुष्प अर्पण करेंगे तो प्रभुकोको भायेंगे? ऐसा ही अन्य बाबतोंका है।

अब वात है सामीभोगकी.. अर्धभोगकी! शबरीके झुठे बोर खायें, द्रोपदीके बर्तनमेंसे रहा हुआ चावलका दाना खाया! विदुरके घर केलेका छिलका खाया! क्यों? कारण वे सब प्रेममें पागल थे, ऐसा हो तब सब चलें! जानबूझकर किया हो तो कपट होगा। वैसे तो प्रभुजीको समस्त जीवन धरना चाहिये, बचपनमें पता न था! अब पता चलने पर शेष जीवन तो धरें! फिर उसमें युवानी हम भुक्तें और बूढापा प्रभुको धरें तो योग्य न होगा! गन्नेका रस चूसकर प्रभुको कूचें धरेंगे? फिर भी किसी कालमें देरी नहीं होती, जब जगें तब सुबह! जैसे भी हो परंतु प्रामाणिकतासे प्रभुकी शरणमें जायेंगे, तो भगवन् स्वीकार करेंगे ही।

६ तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तु समर्पणम्।
दत्तोपहारवचनं तथा च सकलं हरेः॥

तस्मात्	आदौ	सर्वकार्ये	सर्ववस्तु	समर्पणम्	
इसलिये	आरंभमें	सभी कार्योंमें	सर्व वस्तु	समर्पण	
दत्त	उपहार वचनम्	तथा	च	सकलम्	हरेः
देना है	उपहार वचन	तथा	और	सर्व ही	हरिका है

तस्मात् सर्वकार्ये आदौ (संकल्पम् च फलम्) सर्ववस्तु समर्पणम् च तथा उपहार वचनम् दत्त, सकलम् हरेः (तत् निवेदनम्)॥

अतः सभी कार्योंके आरंभमें ही (संकल्प और फल) सर्ववस्तु समर्पण (करें) उपरांत उपहारमें वचन दें, सभी.. सर्वस्व हरि.. श्रीकृष्णका है। (यह निवेदन है।)

तात्पर्य : कर्मोंके आरंभमें.. संकल्पावस्थामें ही प्रभुको समर्पण.. निवेदन करें। उसमें प्रथम हेतुका समर्पण। प्रभु! कार्यका हेतु ही आप हो, तदर्थे कर्म.. आपकी प्राप्ति हेतु ही कर्म करता हूँ। कर्मके दूसरे क्रममें है क्रियाएँ, जो प्रभुको भायें.. आनंद दें ऐसी ही करूँ; क्रियाके साधन, प्रभुके समझकर.. प्रभुने दिये हुए जानकर उपयोग करूँ, तो पवित्र रख सकूँ। अब रहा फल! इसके लिये तो मैं कर्म करता ही नहीं, संकल्पमें ही फल हरिको सोंप दिया है! और मैं ऐसा कुछ भी न करूँ, जिससे वो कर्मफल दुषित.. निम्न हो। क्योंकि भगवानको उत्तम फल ही धरतें है!

ऐसे समग्र कर्म देकर, निवेदन करना है.. उपहार वचन देना है कि सकलम् हरेः। सबकुछ प्रभुशक्तिसे.. कृष्णसे, कृष्णका और कृष्णके लिये करता हूँ। इस उपहार विधिके लिये गीताजीमें सत्तरवें अध्यायके अंतिम श्लोकोंमें निर्देश है। ॐतत्सत् ऐसा बोलकर ही सर्व कार्यारंभ करें, जिससे उपरोक्त सर्वभाव आ जाय।

इससे क्या होगा? सभी हेतु दिव्य होंगे, साथमें क्रियाएँ व्यवस्थित.. जैसी होनी चाहिये वैसी ही होगी। भगवानकी सेवा हेतु ही कर्म करनेमें आयें तो वहाँ वेठको स्थान न होगा, कर्म प्रसन्नतापूर्वक होंगे! और फल तो पहलेसे ही सोंप दिया है इसलिये कर्मका बंधन न होगा! कर्म-मुक्तिकी यही सच्ची युक्ति है! चूँकि हमारा आत्मनिवेदन होगा तब होगा! देर है! पर अभी कर्मनिवेदनसे आरंभ तो करें! यह आचार्यश्रीकी सुंदर युक्ति है। अब एक व्यायवहारिक बात करतें है...

७ न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम्।
सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिद्ध्यति॥

न	ग्राह्यम्	इति	वाक्यम् हि	भिन्न-मार्ग-परम्	मतम्
नहीं	लेने योग्य	ऐसा	वाक्य ही	भिन्न मार्गका	मत.. सिद्धांत
सेवकानाम्	यथा	लोके	व्यवहारः	प्रसिद्ध्यति	
सेवकोंको	जैसे	समाजमें	व्यवहार	प्रचलित है	

ग्राह्यम् न, इति वाक्यम् हि, भिन्नमार्गपरम् मतम्। (न मतम् भक्तिमार्गपरम्)। यथा लोके (धनिकम् प्रति) सेवकानाम् व्यवहारः प्रसिद्ध्यति॥

ग्राह्य नहीं, ऐसा वाक्य ही, भिन्न मार्गका मत है.. चलन है। (भक्तिमार्गका ऐसा विचार नहीं है) जैसे लोकमें.. समाजमें (धनिक.. शेठ प्रति) सेवक.. दासका व्यवहार प्रसिद्ध है। (सेवकको वेतन ग्राह्य नहीं या शेठको काम ग्राह्य नहीं, वैसा लौकिक चलता है, भक्तिमार्गमें नहीं! यहाँ सेवक भी संतोषी, भगवान भी प्रसन्न!)

तात्पर्य : ग्राह्य नहीं है अर्थात् स्वीकार्य नहीं है.. ऐसा नहीं चलेगा! ऐसे वाक्य दूसरे स्थानोंमें मिलेंगे, हमारे भक्तिमार्गमें नहीं ऐसा आचार्यको समझाना है। दूसरे मार्ग अर्थात् ज्ञानमार्ग या तपमार्ग, तांत्रिकों या कर्मकांडीओंके मार्ग। वहाँ थोडीसी भूल भी न चलें। वहाँ तुरंत ही ऐसा मान्य नहीं, ऐसा ग्राह्य नहीं, ऐसा शोर होगा। जहाँ शब्दके उच्चार जैसी भूल मान्य न हो, वहाँ दूसरा क्या चल सकेगा!

भक्तिमार्गमें चाहिये मात्र प्रेम और प्रामाणिकता! जहाँ ये दोनों है वहाँ सेवा, निःस्वार्थता, निष्ठा, समर्पण, अव्यभिचारिता, सब अपनेआप आ जायेगा। यहाँ जितना, जैसा, जो भी किया उससे भक्तको संतोष है और भावसे किया तो भगवान भी प्रसन्न! कभी कभी भक्तको लगता है कि कुछ कर न सका! कितना कम किया! कैसा किया! मैं कैसा जीवन जीया? प्रभु क्षमा करो! मुझे अपनी शरणमें लो!

भगवानको अंतःकरणपूर्वकका ऐसा संताप मान्य है! उसका प्रायश्चितभाव मान्य है, फिर भक्तका कम भी बहुमूल्यवान है! सब ही ग्राह्य है। पत्रं पुष्पं फलं तोयं.. भगवानको कुछ भी चलें! होनी चाहिये सच्ची शरणागति! जैसे शिष्य गुरुकी शरणमें, पत्नी पतिकी शरणमें वैसे भक्त भगवानकी शरणमें!

८ कार्यं तथा समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मतां ततः।
गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णनाम्॥

कार्यम्	तथा	समर्प्य	एव	सर्व	एषाम्	ब्रह्मताम्	ततः
कार्य योग्य	तथा	समर्पण योग्य	ही	सर्व	उसमें	ब्रह्मपनमें	पश्चात्
गंगात्वम्		सर्वदोषाणाम्		गुणदोषा	आदि	वर्णनाम्	
गंगापन		सर्व दोषवालेको		गुण-दोष	आदिके	वर्णनोंमें	

कार्यम् तथा समर्प्य ततः एव सर्व एषाम् ब्रह्मताम्। सर्वदोषाणाम् गुणदोषा आदि गंगात्वम् वर्णनाम्॥

कार्ययोग्य तथा समर्पणयोग्य (होगा) उसके बाद ही वे सब ब्रह्मरूप होंगे। सर्वदोषमें.. गुणदोष.. आदिमें.. गंगापनके वर्णनोंमें.. ..

तात्पर्य : इस श्लोकके आगेका भी बहोत कुछ लुप्त लगता है। निश्चित ही आगे गंगाजीका कोई दृष्टांत होना चाहिये, जिसका अवतरण यहाँ और पीछेके श्लोकमें लिया है। इसलिये ह आठवाँ और नवें अर्धश्लोकका कोई तर्कसंगत अर्थ बैठता नहीं है। और नवम श्लोकसे सभी अलोप होनेसे पूर्ण अनुमान भी शक्य नहीं है। इसलिये सातवें श्लोकतक जो मिला है उसे यथोचित ग्रहण करना है।

फिर भी विचार करें तो, गंगाजीके लिये सुरदासजी वर्णन करतें है कि कोई मेली नहर, गंगाके शुद्ध पानीसे मिलें, तो वो भी सुरनदी हो जाती है, वैसे ही थोडे-बहोत दोषोंके साथ भक्ति करने लगें तो भी, भगवान सेवक मानेंगे ही! ऐसा अनुमान करें तो भी ब्रह्मत्वकी वात ध्यानमें नहीं आती है!

ब्रह्मपन तभी सिद्ध होगा जब विशुद्ध अंतःकरण होगा, परिशुद्ध जीवन होगा और सर्वद्वन्द्व एकसमान होंगे! गुणातीतता आ जायेगी, तभी ब्रह्मरूप मिलेगा! भिन्नरूपसे देखें तो, ब्रह्मरूप तो था ही, उसका विस्मरण हुआ! कारण है दोष! इसलिये जीवकी मलिनता नीकलने पर.. विशुद्ध होनेपर, पुनः समरण हो जायेगा कि अहं ब्रह्म अस्मि। यह अनुभूति बाहरसे न आयेगी, अंदरसे ही स्फूरेगी!

ब्रह्मदर्शन पश्चात् न रहेगा कोई कार्य या न रहेगा कोई कर्तव्य! वैसे तो सच्ची भक्तिका आरंभ ही इस ब्राह्मीस्थितिके बाद है। वहाँ ही रास होगा और वहाँ ही लीला लगेगी! इसलिये हो सकें उतना परिशुद्ध जीवन जीना चाहिये।

९ गंगात्वेन निरूप्या स्यात् तद्वदत्रापि चैव हि। (अपूर्ण)

गंगात्वेन निरूप्या स्यात् तद्वत् अत्र अपि च एव हि
गंगापनसे निरूपण हुआ वैसे यहाँ भी और ही क्योंकि

हि गंगात्वेन निरूप्या स्यात् च तद्वत् एव अत्र अपि। (अपूर्ण)

जैसे गंगापनसे निरूपण हुआ वैसे यहाँ भी... ब्रह्मपनमें भी (समझें। अपूर्ण है..)

तात्पर्य : गंगापनसे क्या निरूपण हुआ वो अध्याहार है, कारण यह ग्रंथ अपूर्ण प्राप्त है। आचार्यश्रीने इतना कुछ लिखा वहाँ कोई श्लोक आधा रखें, यह कैसे मान लें! और विधिवत् कोई ग्रंथका समापन न करें ऐसा होगा क्या?

आगे कहा वैसे, जो प्राप्त है उसमें संतोष रखना है। पर इतना कह सकतें है कि भगवानका मानें, सर्व दोष दूर होंगे ही। भगवानने कहा ऐसा, हमें मिले हुए भोगोंका ही हम स्वीकार करें, जीवनमें जो मिलता है उसीमें ही संतोष रखें, तत्पश्चात् ही आचार्यश्रीने जो कहा है, वैसे निवेदनका आरंभ करें।

श्रीवल्लभ तो आत्मनिवेदनके सोपान तक पहोंचें है, जो हमारे लिये शक्य नहीं है। परंतु निवेदनका अभ्यास तो कर सकतें है के नहीं! जैसे माँको देखकर बेटी घर घर खेलती है! पिताका अनुकरण पुत्र करता है! वह सच्चा नहीं है पर बालकोंकी दृष्टिमें गलत भी नहीं है। वैसे हमारा निवेदन छोटा होगा, त्रूटीपूर्ण होगा, पर मृषा.. गलत न होगा। वहाँ चाहिये मात्र प्रामाणिकता! जैसे शिर्षकमें दर्शाया है वैसे, प्रथम दृढ निश्चय करें कि भगवान तक पहोंचना ही है। दूजा संसारके हरेक व्यवहारमें विवेक रखें, विवेकपूर्ण कर्म ही ज्ञान प्राप्त करातें है। अच्छा-बुरा परखनेकी बुद्धिसे, उत्तम निर्णय लेकर, व्यवहार करना ही विवेक है। तीसरा, निवेदनका एक अर्थ है अर्पण। अपना दत्त.. दिया हुआ कैसा होना चाहिये? सु.. अच्छा.. भगवानको भा जाय ऐसा ही! इसलिये सुदत्त कहा है!

अंतमें, अर्चन.. पूजन! सुनिश्चय करके और विवेक धरकर, सुदत्त.. जो योग्य है वो ही अर्पें और इतना करके पूजन करेंगे तो कदाचित् प्रभुको पसंद हो! प्रभु ध्यानमें लें! भूतकाल जैसा भी हो, उसे भूलकर वर्तमान पर ध्यान दें। यह निवेदनका भाव.. सर्वश्रेष्ठभाव जीवनमें लायें, अंतमें तो यही काम आयेगा। सामान्य निवेदनसे आत्मनिवेदन तक पहोंच सकेंगे।

ग्रंथके समापनमें...

'सिद्धांत रहस्य' नाम किसने कब दिया उसकी विगत नहीं है। पर दोनों सिद्धांत और उसके रहस्य हमनें देखें। एक ओर रहस्य भी है जिसे जानना आवश्यक है।

यदि भगवान अचानक किसीके समक्ष प्रगट हो जाय या एकदम आकरके कहें कि वरदान मांग! तो उस व्यक्तिकी हालत क्या होगी? सोचना! भगवान तो जाने दो, कोई बडी हस्ती अचानक सामने आ जाये ना, तो भी माणस चकरा जाय! कुछ सुझेगा नहीं कारण! ऐसा कोई अनुभव नहीं या उसकी पूर्वतैयारी नहीं है!

आचार्यश्री जो निवेदनका आग्रह रखतें है, वह आत्मनिवेदनकी पूर्वतैयारी है! और साथमें जहाँ निवेदन करना है उन भगवानको जाननें होंगे! एक तो हमनें यांत्रिक पूजापाठसे या मंदिरोंमें धूम धूमकरके, भगवानकी महत्ता ही क्षीण कर दी है। भगवान यह शब्द ही इतना सस्ता किया है कि उनकी स्वराटता.. विराटता या समग्रता ध्यानमें आती नहीं और वो ध्यानमें न आयें वहाँ तक, हम स्मरणकी पगथी पर ही अटकें है! श्रवणं कीर्तनं स्मरणं.. कुछ आगे जाओ तो पादसेवनं.. उनका कुछ काम करेंगे या दौडेंगे, उतना ही! इससे आगे नहीं जा सकते! जबतक भगवानकी वैश्विकअर्चा.. समग्रता ध्यानमें नहीं आयेगी तबतक, हम बालनिशालमें है.. प्राईमरी स्कूलमें है!

भगवानका स्वरूप कैसा है! महतोमहीयान्.. गरयोगरीयान् या अणोरणीयान्! ऐसा एकमेवाद्वितीय स्वरूप ध्यानमें न आयें तबतक, अर्चन न होगा.. हो नहीं सकता! और फिर ऐसी अनुभूति होनेपर, आप छोटी मूर्तिको पूजते हो या विशालकाय मूर्तिको पूजते हो, मूर्ति रखते हो या नहीं रखते हो, कोई अंतर नहीं रहता.. कोई फर्क नहीं पडता! यहाँ आचार्यलोग कहतें है, अब आप मानसीपूजा भी कर सकते हो। उसके अधिकारी हो! पर पहले भगवानको तो पहचानों!

ठीक है, पर कलियुगमें यह सब कहाँ शक्य है? तो क्या कर सकतें है? ओर एक रास्ता है, जिसका नाम है 'आश्रय'! आचार्यश्रीने उसका वर्णन 'नवरत्न' ग्रंथमें किया है, उसके नव ही श्लोक है पर वो वास्तवमें, संपूर्ण आश्रयको समझानेवाला रत्न है। उसे 'शरण रहस्य' ही मान सकतें है और उसे हम श्रीवल्लभ साहित्यमालाके, रत्न-४ में देखेंगे। अस्तु,

नित्यशरणाभिलाषी,
प्रशांत देसाई